दयानंद कला महाविद्यालय, लातूर

हिंदी विभाग

बी ए द्वितीय वर्ष

सत्र : तृतीय (AEC)

पेपर का नाम : ." गद्य विविधा भाग 1" HHINMIL -1201

डॉ. मीना घुमे

Swami Ramanand Teerth Marathwada University, Nanded
Faculty of Humaniti Hindi
Under Graduate Second Year Programme, Semester -III
Paper Code : HHINMIL -1201, Title गद्य विविधा-भाग-I *(AEC)(Cr-2)*
Curriculum Details

Module No.	Unit No.	Name of Topic	Hrs. Required tocover the contents 1 Hrs.=60 M.
1.0		भाग-I	07
	1.1	निबंध : भारत का मुकुट- -नरेंद्र कोहली	
	1.2	लघु निबंध : सोशल मीडिया और क्रांति – संपत सरल	
2.0		भाग-2	07
	2.1	संस्मरण : और ओ सुधरका-सत्यदेव त्रिपाठी	
	2.2	नुक्कड़ नाटक : नई बिरादरी- स्वयं प्रकाश	
3.0		भाग-3	08
	3.1	पत्र - प्रसाद के नाम पत्र- प्रेमचंद	
	3.2	यात्रा वृतांत : अमेरिका में बसे भारतीयों की कसक और कमाल – मृदुला सिन्हा	
4.0		भाग-4	08
	4.1	कहानी-कच्चे धागे-उषा प्रियवंदा	
	4.2	कहानी-पूस की एक और रात-लक्ष्मी शर्मा	
		Total	30

1.0 भाग 1

1.1 'भारत का मुकुट' - नरेंद्र कोहली (व्यंग्य निबंध)

नरेंद्र कोहली हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध लेखक थे, जिन्होंने उपन्यास, नाटक, निबंध और व्यंग्य की विधाओं में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनका जन्म 6 जनवरी 1940 को सियालकोट (अब पाकिस्तान में) हुआ था। भारत विभाजन के बाद उनका परिवार भारत आ गया। कोहली का साहित्य भारतीय संस्कृति, जीवनमूल्यों और सामाजिक विसंगतियों पर आधारित होता है। व्यंग्य लेखन में भी वे अत्यंत प्रभावशाली थे। उनकी रचनाओं में गहरी सामाजिक और राजनीतिक संवेदना झलकती है। उनका व्यंग्य 'भारत का मुकुट' उनके तीखे, बौद्धिक व्यंग्य का प्रमाण है। नरेंद्र कोहली ने हिंदी साहित्य को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया और वे सदैव एक युगद्रष्टा साहित्यकार के रूप में याद किए जाएंगे।

भारत के मस्तक पर सुशोभित कश्मीर को हम वर्षों से 'भारत का मुकुट' कहते आए हैं। यह एक गौरवशाली उपमा है, जो न केवल कश्मीर की भौगोलिक स्थिति को दर्शाती है, बल्कि उसकी सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक महत्ता को भी परिलक्षित करती है। किंतु आज यह मुकुट अपनी चमक खोता जा रहा है, और यह केवल शाब्दिक नहीं, वास्तविक चिंता का विषय बन गया है। नरेंद्र कोहली जैसे सजग साहित्यकारों ने अपनी पैनी दृष्टि से इस वास्तविकता को उद्घाटित किया है। उन्होंने

Edit with WPS Office

अपने निबंध में जो प्रश्न उठाए हैं, वे केवल एक लेखक के नहीं, बल्कि हर जागरूक भारतीय के भीतर गूंजते चिंतन हैं।

कश्मीर केवल एक सीमा वाद नहीं है। यह एक राष्ट्रीय प्रश्न बन गया है, जिसमें भारत की नीति, राजनीति, समाज और नागरिक चरित्र की गहन परीक्षा हो रही है। जिस कस्बे की आगजनी से नरेंद्र कोहली अपने लेख की शुरुआत करते हैं, वह केवल ईंट-पत्थर की नहीं, बल्कि संवेदना, सुरक्षा, शासन और मानवता की जली हुई राख है। जब सरकार के प्रतिनिधि कहते हैं कि 'एक कस्बा जल गया', तो यह एक समाचार नहीं, बल्कि प्रशासनिक असफलता की स्वीकारोक्ति है। यह वह क्षण है, जब देश का आम नागरिक पूछना चाहता है — कि अगर कश्मीर भारत का अंग है, तो वहां बार-बार बाहरी घुसपैठ क्यों होती है? क्यों एक ओर भारतीय सेना को वहाँ नियंत्रण में रहने का आदेश दिया जाता है, और दूसरी ओर आतंकी आसानी से घुसकर कस्बे जला जाते हैं?

लेखक तीखे व्यंग्य के माध्यम से इस विरोधाभास को प्रश्न के रूप में उकेरते हैं: "सेना नहीं घुस सकती, क्योंकि वह भारतीय है; आतंकी घुस सकते हैं, क्योंकि वे पाकिस्तानी हैं।" यह वाक्य जितना हास्यास्पद प्रतीत होता है, उतना ही पीड़ादायक भी है। यह भारत सरकार की उस नीति को उजागर करता है, जिसमें वह राष्ट्रहित से अधिक अंतरराष्ट्रीय समीकरणों और घरेलू राजनीति के समीकरणों को प्राथमिकता देती है। जब कोई देश अपने ही क्षेत्र में अपनी सेना को रोकने और विदेशी आतंकियों को बर्दाश्त करने लगे, तो यह केवल रणनीतिक असफलता नहीं, बल्कि वैचारिक दिवालियापन होता है।

इस निबंध की एक बड़ी उपलब्धि यह है कि यह किसी भी पक्ष को सीधे खलनायक नहीं ठहराता, बल्कि समाज के प्रत्येक घटक – सरकार, नेता, आम नागरिक, प्रशासन और स्वयं पीड़ित – सबको कटघरे में खड़ा करता है। लेखक यह दिखाते हैं कि भारत में राजनीति कैसे राष्ट्रनीति के ऊपर हावी हो चुकी है। जब नेता यह कहने लगें कि "जो दंगे कर रहे हैं, वे हमारे वोट हैं", और "जो पीड़ित हैं, वे हमें वोट नहीं दे सकते", तब लोकतंत्र की आत्मा कराह उठती है। यह कथन केवल व्यंग्य नहीं, हमारे लोकतंत्र की सच्चाई है, जहाँ संवेदनाएँ वोट बैंक के आगे दम तोड़ देती हैं।

नेता की वह छवि, जो जनता का मार्गदर्शन करती थी, अब एक गणक बन चुकी है – जो नीतियों की दिशा जनता की भलाई से नहीं, चुनावी गणना से तय करता है। लेखक जब नेताजी के मुख से कहलवाते हैं, "हम वह कर रहे हैं जो करना चाहिए – हम अपने वोटों की रक्षा कर रहे हैं", तब स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रभक्ति अब नारेबाज़ी और चुनावी भाषणों तक सिमट चुकी है। कश्मीर की आग केवल वहां के लोगों की नहीं है, वह पूरे देश के प्रशासनिक और नैतिक ढाँचे को झुलसा रही है।

लेकिन लेखक केवल शासकों को दोषी नहीं ठहराते। आम नागरिक भी इस पतनशील स्थिति का एक बड़ा कारक है। ‘रामलुभाया’ नामक पात्र, एक प्रतीक है उस नागरिक का, जो अपने घर में आतंकियों को 'मेहमान' के रूप में रखता है, पुलिस को घर में घुसने नहीं देता, और जब घर जल जाता है, तो पुलिस पर दोष मढ़ता है। उसकी मानसिकता यह है कि पुलिस चेतावनी दे सकती है, पर कार्रवाई नहीं कर सकती; आतंकी को घर से नहीं निकाल सकते, क्योंकि वे 'मित्र' हैं; और अगर वे घर जला दें, तो गुस्सा पुलिस पर उतारा जाएगा। यह स्वार्थ, यह अनैतिकता और यह तर्कहीनता हमारे समाज का एक खतरनाक यथार्थ है।

रामलुभाया की बातों से यह स्पष्ट होता है कि नागरिक केवल अधिकार चाहता है, कर्तव्य नहीं। वह सुरक्षा चाहता है, पर सतर्कता नहीं। वह चाहता है कि सरकार उसकी रक्षा करे, पर वह खुद अपने घर में आतंकियों को प्रश्रय देता है। इस अजीब द्वंद्व को लेखक अत्यंत मार्मिक और कटाक्षपूर्ण शैली में उजागर करते हैं, जो पाठक को झकझोरता है। रामलुभाया जैसे लोगों के कारण ही आतंकियों को देश के भीतर स्थान मिलता है। जब समाज की चेतना केवल 'सम्मान' और 'स्वार्थ' के इर्द-गिर्द घूमती है, तब राष्ट्र की अखंडता पर प्रश्नचिह्न लगना स्वाभाविक है।

कश्मीर की समस्या को समझने के लिए केवल सुरक्षा या विदेश नीति की दृष्टि से सोचना पर्याप्त नहीं है। यह एक गहन सामाजिक और संवैधानिक प्रश्न भी है। लेखक यह दिखाते हैं कि कैसे कश्मीरी पंडित, जो अपने ही देश में विस्थापित होकर

Edit with WPS Office

जीवन यापन कर रहे हैं, उनकी सुध लेने वाला कोई नहीं है। सरकार उन्हें कश्मीरी मानकर वापसी के लिए प्रेरित करती है, पर कश्मीरी उन्हें भारतीय मानकर लौटने नहीं देते। यह स्थिति दर्शाती है कि आज़ादी के 75 वर्षों बाद भी भारतीयों के लिए भारत में ही 'पराया' बन जाना कोई असंभव बात नहीं है।

लेख में यह स्पष्ट रूप से रेखांकित किया गया है कि भारत में आज राजनीति, संवेदनाओं की सबसे बड़ी हत्यारी बन गई है। नेताओं के लिए अब यह ज़रूरी नहीं कि वे जनता के सुख-दुख में भागीदार बनें; ज़रूरी यह है कि उन्हें कितने वोट मिलते हैं। कोई भी मंत्री यह कह सकता है कि "जो लोग दंगा कर रहे हैं, वे दुखी हैं, उन्हें क्रोध प्रकट करने दीजिए।" यह उस शासन व्यवस्था की प्रतीकात्मक विफलता है, जहाँ अपराध को भावनात्मक जामा पहनाकर न्याय से बचा लिया जाता है।

यहाँ सबसे बड़ा प्रश्न यह है – कि क्या केवल वोटों की राजनीति के लिए, हम अपने देश की आंतरिक सुरक्षा, सामाजिक एकता, नागरिक जीवन और न्याय को दांव पर लगाना स्वीकार कर सकते हैं? क्या यह सही है कि दंगाईयों को केवल इसलिए न रोका जाए क्योंकि वे राजनीतिक रूप से लाभकारी हैं? क्या यह तर्क कि "वे तो हमें वोट नहीं देंगे" – किसी लोकतंत्र का न्यायिक आधार हो सकता है?

इन सब प्रश्नों के बीच लेखक एक बहुत कठोर सत्य की ओर संकेत करते हैं – कि अब देश की रक्षा केवल सीमा पर युद्ध लड़ने से नहीं हो सकती। अब यह लड़ाई भीतर से लड़ी जानी चाहिए – विचारों से, नीतियों से, कानूनों से और समाज की जागरूकता से। अगर आज भी हम यह नहीं समझते कि आतंकियों और नागरिकों में फर्क करना ज़रूरी है; कि सेना को केवल हथियार नहीं, निर्णय की स्वतंत्रता भी चाहिए; कि राजनीति को वोट नहीं, राष्ट्रहित चाहिए – तो हम हर बार केवल जलते कस्बों की खबर पढ़ते रहेंगे, और वह दिन दूर नहीं जब 'कश्मीर' इतिहास की एक पीड़ा बन जाएगा।

कश्मीर एक प्रतीक है – भारत की अखंडता का, उसकी विविधता में एकता का, उसकी सांस्कृतिक गरिमा का। लेकिन यह प्रतीक लगातार अपमानित हो रहा है – शासन की लापरवाही से, समाज की निष्क्रियता से, नेताओं की स्वार्थपरता से और नागरिकों की जिम्मेदारी से पलायन से। यह केवल एक राज्य नहीं, यह भारत की आत्मा है। और आत्मा को बार-बार आहत करने वाला समाज, कभी स्थायी रूप से खड़ा नहीं रह सकता।

आज आवश्यकता है कि हम इन प्रश्नों से मुँह न मोड़ें, उन्हें स्वीकार करें। प्रत्येक आम नागरिक को यह समझना होगा कि राष्ट्र की रक्षा मात्र सेना का जिम्मेदारी नहीं, उसकी भी ज़िम्मेदारी है। सरकार को यह समझना होगा कि हर नीति का आधार वोट नहीं, राष्ट्रहित होना चाहिए। संविधान निर्माताओं के मूल उद्देश्य को पुनः जीवंत करने की आवश्यकता है, जहाँ प्रत्येक नागरिक को समान अधिकार और कर्तव्य हों – चाहे वह किसी भी राज्य का हो।

जब तक हम 'रामलुभाया' बनने से इनकार नहीं करते, तब तक न कश्मीर बचेगा, न उसका सम्मान। जब तक हम नेताजी की तरह सोचते रहेंगे कि "दंगा करने वालों को कुछ मत कहो, वे हमारे वोट हैं", तब तक यह लोकतंत्र एक धोखा बना रहेगा। और जब तक हम यह मानते रहेंगे कि आतंकी केवल 'आक्रोशित' हैं, तब तक भारत का मुकुट बार-बार अपमानित होता रहेगा।

यह समय है कठोर आत्मनिरीक्षण का, जहाँ हम केवल दूसरों पर आरोप न लगाएँ, बल्कि अपने भीतर झाँकें। यह समय है कि हम अपने विचारों, नीतियों और निर्णयों को राष्ट्रहित में ढालें। नहीं तो एक दिन इतिहास हमें क्षमा नहीं करेगा।

1.2 सोशल मीडिया और क्रांति : सम्पत सरल (लघु निबंध)

हिन्दी साहित्य में जब भी समकालीन व्यंग्य की चर्चा होती है, तो सम्पत सरल का नाम स्वतः ही स्मृति में कौंध उठता है। सम्पत सिंह शेखावत, जिन्हें सम्पत सरल के नाम से साहित्य जगत में जाना जाता है, आज न केवल भारत अपितु विश्वभर में अपने सटीक, चुटीले और विचारोत्तेजक व्यंग्य के लिए पहचाने जाते हैं। राजस्थान के शेखावाटी क्षेत्र में जन्मे इस कवि और लेखक ने आरंभिक शिक्षा गाँव में प्राप्त की और फिर जयपुर से उच्च शिक्षा लेकर राजस्थान विश्वविद्यालय से बी.एड. की डिग्री

Edit with WPS Office

प्राप्त की। परंपरागत शिक्षण-पद्धति को आत्मसात करते हुए उन्होंने अपने जीवन का मार्ग साहित्य, व्यंग्य और मंचीय प्रस्तुतियों के माध्यम से तय किया।

सम्पत सरल ने अपनी लेखनी के माध्यम से हास्य को केवल हँसी तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे सामाजिक यथार्थ का शस्त्र बना दिया। उनका व्यंग्य मनोरंजन मात्र नहीं करता, बल्कि सामाजिक विसंगतियों को उजागर करता है, मानवीय व्यवहार की विडम्बनाओं को रेखांकित करता है और पाठक को ठहरकर सोचने पर मजबूर करता है। सोशल मीडिया पर आधारित उनका प्रसिद्ध निबंध 'सोशल मीडिया और क्रान्ति' इस बात का जीवंत उदाहरण है कि किस प्रकार हास्य और व्यंग्य के माध्यम से एक गहरी सामाजिक दृष्टि प्रस्तुत की जा सकती है।

यह निबंध केवल सोशल मीडिया के सकारात्मक और नकारात्मक पक्षों का विश्लेषण नहीं करता, बल्कि यह उस मनोवृत्ति की भी पड़ताल करता है जो इस तकनीकी क्रान्ति के साथ पनपी है। लेखक कहते हैं कि सोशल मीडिया ने मनुष्य को घर बैठे आवारागर्दी करने का अवसर दे दिया है। यह कथन जितना चुटीला है, उतना ही सटीक भी है। उन्होंने व्यंग्य में लपेटकर बताया है कि किस प्रकार लोग मुफ्त की सलाहें देते हैं, आधा-अधूरा ज्ञान फैलाते हैं और सोशल मीडिया को 'थोक भाव' में उपयोग करते हैं।

सम्पत सरल के अनुसार सोशल मीडिया ने बासी लतीफों को पुनर्जीवित करने और बदले में रेडीमेड स्माइली प्राप्त करने जैसी सुविधाएँ उपलब्ध कराई हैं। यह एक ऐसी "फास्टेस्ट लॉफ्टरदायक सेवा" बन गई है, जिसने हँसी को भी डिजिटल बना दिया है। सोशल मीडिया के माध्यम से मूक बोलने लगे हैं, बधिर सुनने लगे हैं और पंगु गिरि लाँघ रहे हैं – यह पंक्ति केवल व्यंग्य नहीं, बल्कि डिजिटल युग की करुणा भी है।

वे आगे बताते हैं कि सोशल मीडिया का दायरा इतना व्यापक हो चुका है कि सात समंदर पार की अफवाहों से तो लोग अपडेट रहते हैं, परंतु पड़ोस में हुई चोरी की जानकारी अखबार से ही मिलती है। यह आधुनिक समाज की विसंगति का परिचायक है, जहाँ आभासी संसार ने वास्तविक जीवन को पीछे छोड़ दिया है। लेखक फेसबुक और यूट्यूब जैसे प्लेटफॉर्मों पर होने वाली घटनाओं के माध्यम से यह स्पष्ट करते हैं कि अब 'पाठक' नहीं, 'दर्शक' समाज बन चुका है, जहाँ पढ़ने और समझने से अधिक शेयर करने और वायरल करने पर जोर है।

सोशल मीडिया के प्रभाव को वे व्यंग्यात्मक भाषा में क्रान्ति कहते हैं, जिसे कुछ लोग भ्रान्ति समझते हैं। वे कहते हैं कि जब एक 61 वर्षीय पुरुष फेसबुक पर 16 वर्षीय लड़की बनकर 'गुड नाइट' लिखता है और हजारों लोग रात-रात भर उसे लाइक और कमेंट करते हैं, तो यह कोई मामूली घटना नहीं, बल्कि एक सामाजिक परिवर्तन है – एक डिजिटल क्रान्ति है। रूप -यौवन और श्रृंगार अब आईनों के मोहताज नहीं, बल्कि सेल्फी के माध्यम से अपनी छवि का स्वयं सृजन करना संभव हो गया है। यह आत्ममुग्धता और सार्वजनिक प्रदर्शन की मानसिकता का प्रमाण है।

लेखक सोशल मीडिया की सबसे तीव्र आलोचना वहाँ करते हैं जहाँ लोग दूसरों की विवशता और गरीबी का प्रदर्शन करके अपनी संवेदना की मार्केटिंग करते हैं। सड़क पर सोते हुए, जूठन खाते हुए, या भीख माँगते लोगों की तस्वीरें खींचकर सोशल मीडिया पर डालना और फिर उस पर सहानुभूति जुटाना – यह आधुनिक भद्रलोक की नई नैतिकता बन गई है। लेखक इसे तीखा कटाक्ष करते हुए कहते हैं कि अब दर्शक के श्रीमुख से 'आह' नहीं, 'अहा' निकलता है। यह सामाजिक पीड़ा का बाजारीकरण है, जहाँ दूसरों के दुःख से हम अपनी प्रसिद्धि अर्जित करते हैं।

लेखक का व्यंग्य वहाँ और तीखा हो जाता है, जहाँ वे पुराने समय की भक्ति-पद्धति और आज की डिजिटल श्रद्धा की तुलना करते हैं। पहले देवी-देवताओं को मनाने के लिए सोलह पोस्टकार्ड लिखने होते थे। न केवल यह प्रक्रिया जटिल और गोपनीय होती थी, बल्कि इसमें धन, श्रम और समय – तीनों की आवश्यकता होती थी। परंतु आज के सोशल मीडिया युग में देवी-देवताओं की फोटो गूगल से डाउनलोड कर के उसे सोशल मीडिया पर पोस्ट करना ही श्रद्धा बन गई है। यह प्रक्रिया इतनी तेज़ है कि चुटकी में 'मनोकामना पोस्ट' वायरल हो जाती है और थोड़ी देर में वही पोस्ट हमारे पास 'संशोधित मनोकामना' के साथ लौट आती है। अब कोई पोस्टकार्ड नहीं, कोई डाकघर नहीं, कोई पते की चिंता नहीं। श्रद्धा अब 'डिजिटल' हो गई है और देवी-देवता भी सोशल प्लेटफॉर्म पर 'ऑनलाइन' रहते हैं।


Edit with WPS Office

सम्पत सरल अपने व्यंग्य के माध्यम से यह बताने में सफल होते हैं कि सोशल मीडिया ने सामाजिक और धार्मिक प्रक्रियाओं को कैसे बदल डाला है। वे कहते हैं कि पहले पोस्टकार्ड खरीदना, पैसे जोड़ना, पते खोजना और डाकघर जाना – सब एक कठिन तपस्या थी। परन्तु अब यह सब एक 'क्लिक' से संभव है। डिजिटल क्रान्ति ने भक्ति को भी 'शॉर्टकट' बना दिया है।

सोशल मीडिया के इस प्रभावशाली और सर्वव्यापी स्वरूप को लेखक केवल तकनीकी विकास नहीं, बल्कि मानसिक और सामाजिक संक्रमण मानते हैं। वे इस संक्रमण को कभी हास्य में, कभी विडम्बना में और कभी तीखे कटाक्ष में पिरोते हैं। यह निबंध हमारे समाज का वह चेहरा है, जिसे हम अक्सर अनदेखा कर देते हैं – परन्तु हँसते-हँसते जब यह चेहरा हमारे सामने आता है, तो भीतर कहीं कुछ चुभता है, कुछ असहज करता है।

लेखक भविष्य को लेकर आश्वस्त हैं कि सोशल मीडिया का प्रभाव दिन-ब-दिन बढ़ेगा। वे व्यंग्य में कहते हैं कि जब हर घर में झाँकने वाली विंडो और दरवाज़ा एक छोटे-से स्मार्टफोन में समा गया है, तब ऑनलाइन ने किसी रोमांच को हराया नहीं, बल्कि नया रोमांच दिया है। आज जब हर वर्ग, हर धर्म, हर भाषा का व्यक्ति बिना वेतन, बिना पद के, ओवरटाइम में सोशल मीडिया पर सक्रिय है, तब यह तय है कि इसका भविष्य उज्ज्वल है।

सम्पत सरल की लेखनी का सबसे बड़ा गुण यह है कि वे जिस विषय को उठाते हैं, उसे केवल व्यंग्य से नहीं, एक सामाजिक दृष्टिकोण से देखते हैं। 'सोशल मीडिया और क्रान्ति' निबंध हास्य में लिपटा हुआ एक गंभीर सामाजिक दस्तावेज है, जो यह बताता है कि आज की दुनिया कैसे बदल रही है – और कैसे हम इन बदलावों के साथ स्वयं को अनजाने में ढालते जा रहे हैं। सम्पत सरल का व्यंग्य हँसी की परतों के नीचे छिपे हुए समाज के यथार्थ को उजागर करता है।

इस निबंध में प्रयुक्त घटनाएँ, प्रसंग और पात्र चाहे काल्पनिक हों या प्रतीकात्मक, वे हर पाठक को अपने जीवन का हिस्सा लगती हैं। चाहे वह यूट्यूब पर गाली देने वाला दर्शक हो, या फेसबुक पर प्रेमिका बनकर बैठा व्यक्ति – हर चरित्र समाज के भीतर ही मौजूद है। यह निबंध हमें केवल हँसाता नहीं, बल्कि हमारा आईना भी बनता है।

अंततः, यह कहना अनुचित न होगा कि सम्पत सरल का यह निबंध सोशल मीडिया के बहाने हमारे समय, समाज और मानसिकता की एक गहन पड़ताल है। व्यंग्य के इस रूप में उन्होंने जो संवेदना, सजगता और सामाजिक चेतना दिखाई है, वह हिन्दी साहित्य की व्यंग्य परंपरा को एक नई दिशा देती है। यह निबंध आज के युग का एक महत्वपूर्ण दर्पण है – जहाँ हम सब दिखाई देते हैं, परंतु स्पष्ट तभी होते हैं जब हँसी के पीछे की सच्चाई को समझने की कोशिश करते हैं।

2.0 भाग 2

2.1 'और ओ सुघरका..'- सत्यदेव त्रिपाठी (संस्मरण)

सत्यदेव त्रिपाठी हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने वाले एक सशक्त रचनाकार हैं, जिनका लेखन आलोचना, संस्मरण, अनुवाद, पत्रकारिता तथा अध्यापन जैसे विविध आयामों से सम्पन्न है। इनका जन्म 2 जून, 1954 को उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जनपद के सम्मौपुर, ठेकमा नामक गाँव में हुआ। जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में खेती-बारी और यजमानी करते हुए इन्होंने अपनी उच्चतर माध्यमिक शिक्षा पूर्ण की। वर्ष 1973 से 1977 तक डाक-तार विभाग में लिपिक पद पर कार्य करते हुए इन्होंने बी.ए. और एम.ए. की शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात 1977 से 2016 तक चेतना महाविद्यालय से लेकर गोवा विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ, वाराणसी, एसएनडीटी महिला विश्वविद्यालय पूना और मुंबई में अध्यापन तथा शोध-निर्देशन का कार्य करते रहे।

यह व्यक्तित्व साहित्य, नाट्य और फिल्म समीक्षा के क्षेत्र में एक प्रतिष्ठित नाम है, जिनकी अब तक बारह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। जयशंकर प्रसाद की जीवनी 'अवसाद का आनन्द' सहित ए.के. हंगल, सत्यदेव दुबे, हबीब तनवीर जैसे रंगकर्मियों

Edit with WPS Office

पर संस्मरणात्मक कृतियाँ भी इन्होंने लिखी हैं। अनुवाद के क्षेत्र में भी इनका योगदान महत्वपूर्ण है—मराठी और गुजराती से हिन्दी तथा भोजपुरी में कई रचनाओं का अनुवाद किया है। 'कोरा कैनवस' (मराठी से) और 'दिल की जुबान में' (गुजराती शायर मरीज की ग़ज़लें) उनकी चर्चित अनूदित पुस्तकें हैं। गुजराती नाटक 'सिद्धहेम' का हिन्दी अनुवाद कर उसका सफल मंचन भी हुआ है।

पत्रकारिता में भी इन्होंने लगभग 22 वर्षों तक नवभारत टाइम्स, जनसत्ता, आज समाज और समग्र दृष्टि जैसे प्रतिष्ठित पत्रों में रंगमंच और सिनेमा पर नियमित लेखन किया। इन्हें बाबूराव विष्णु पराडकर पुरस्कार, नन्ददुलारे वाजपेयी सम्मान, अनन्त गोपाल शेवड़े सम्मान, कमलेश्वर कथा सम्मान, साहित्य सारथी, रामचन्द्र शुक्ल सम्मान आदि अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है।

सत्यदेव त्रिपाठी की विशिष्ट पहचान हिन्दी गद्य की 'संस्मरण विधा' में भी स्थापित होती है। संस्मरण हिन्दी साहित्य की वह आत्मपरक विधा है जिसमें लेखक अपने जीवन की किसी स्मरणीय घटना, अनुभव या व्यक्ति को वर्तमान में फिर से जीने का प्रयास करता है। संस्मरण आत्मकथा से इस मायने में भिन्न होता है कि यह जीवन की किसी संक्षिप्त घटना या व्यक्ति को केंद्र बनाकर उसे कलात्मक पुनर्रचना के साथ प्रस्तुत करता है। यह एक भावनात्मक और आत्मीय अभिव्यक्ति होती है जिसमें लेखक स्वयं कथा का केन्द्र होता है, परन्तु उद्देश्य केवल आत्म-प्रदर्शन नहीं, वरन् उस अनुभव से जनमानस को जोड़ना होता है।

सत्यदेव त्रिपाठी द्वारा लिखित संस्मरण 'और ओ सुघरका...' इसका सटीक उदाहरण है, जो उनके निजी अनुभवों पर आधारित होकर भी एक व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक विमर्श को सामने लाता है। यह रचना मूलतः दो भागों में विभक्त है—पहला भाग 'करियवा-उजरका' और दूसरा 'और ओ सुघरका', जिसमें लेखक के जीवन में बैलों की उपस्थिति, उनके साथ आत्मीय सम्बन्ध, ग्रामीण जीवन और कृषि संस्कृति का यथार्थ चित्रण है।

'और ओ सुघरका' केवल एक संस्मरण नहीं, बल्कि एक समूचे युग की स्मृति है—एक ऐसी संस्कृति का दस्तावेज जो अब लुप्त होती जा रही है। यह रचना उस समय की है जब पशु केवल श्रम के साधन नहीं, बल्कि परिवार का हिस्सा होते थे। लेखक ने अपनी संस्मृति में बैलों को एक संवेदनशील पात्र की तरह प्रस्तुत किया है, जो न केवल खेती में सहायक हैं, बल्कि उनके जीवन के प्रत्येक मोड़ पर साथ निभाते हैं।

संस्मरण के पहले भाग में करियवा और उजरका नामक दो बैल हैं—एक काला और दूसरा सफेद। करियवा नेत्रहीन है और उसका व्यवहार कुछ उग्र है, पर लेखक इसे उसकी मानसिक पीड़ा की प्रतिक्रिया के रूप में देखता है। वहीं उजरका कोमल, स्नेही और बच्चों के प्रति सौम्य है। लेखक ने उनके साथ अपने गहरे भावनात्मक सम्बन्धों का चित्रण करते हुए यह बताया है कि कैसे सुबह उन्हें चारा देते-देते वह पढ़ाई करता और उसमें उसकी जीवनदृष्टि बनती है। खेत जोतने, कुएँ से पानी खींचने, गन्ना पेरने और खेती के कठिनतम कार्यों में भी ये बैल कभी पीछे नहीं हटते। वे लेखक के बचपन के साथी हैं—जिसमें माँ और काका की ममता और परिश्रम भी जुड़ा है।

दूसरे भाग 'और ओ सुघरका' में लेखक अपनी नौकरी के बाद गाँव लौटता है और सुघरका नामक एक नए बैल को खरीदता है। सुघरका नाम लेखक ने स्वयं दिया क्योंकि उसका वास्तविक नाम नहीं था और वह अत्यन्त 'सुग्घर'—सुरूप, संयमी और शांत था। लेखक का सुघरका के प्रति लगाव गहन और आत्मीय है। वह बैल अपने व्यवहार, आहार, चाल-ढाल और धैर्य से लेखक को एक आदर्श की तरह प्रतीत होता है। उसकी चाल 'मीठी' है—न दौड़ने वाला, न थकने वाला। वह काम चाहे जितना भी हो, उसे एकरस और निरंतर करता है, बिना थके, बिना रोके। गाँव वाले भी उसकी सुंदरता और सुघरई से मोहित हो जाते हैं। माँ उसके लिए दरवाजे में ताला लगाने तक की व्यवस्था करती हैं, ताकि रात में कोई उसे चुरा न ले जाए। माँ और सुघरका के बीच का रिश्ता तो इतना भावनात्मक हो जाता है कि माँ रातों को उठकर उसे देखने लगती हैं।

सुघरका की खाने की आदत भी विलक्षण थी—वह थकान के बाद चारा खाता, कभी जल्दी नहीं करता। सब बैल जब नाँद पर टूट पड़ते, वह चुपचाप बैठ जाता, और पूरी थकान उतारने के बाद देर शाम को चारा खाता, जिसे वह धीरे-धीरे चाट-चाटकर खाता था। सूखा चारा, अलग पानी—इन सब बातों से उसकी अलग पहचान बनती है। लेखक ने उसके व्यवहार, शारीरिक

Edit with WPS Office

बनावट, उसकी संवेदनशीलता (जैसे नाक के ऊपर के हिस्से को कोई छू न सके) को इतने बारीक ढंग से प्रस्तुत किया है कि पाठक उसे एक जीवंत पात्र के रूप में अनुभव करता है।

इस संस्मरण की मूल संवेदना ग्रामीण भारत की कृषि संस्कृति, पशुओं के साथ मनुष्य के गहरे आत्मीय सम्बन्ध, पारिवारिक मूल्यों, श्रम की गरिमा और भावनात्मक संबंधों के ताने-बाने में रची-बसी है। इसमें आधुनिकता की चकाचौंध के बीच कहीं पीछे छूट गई उस लोक-संस्कृति की आहट है, जहाँ पशु केवल खेत जोतने का साधन नहीं, बल्कि परिवार के सदस्य होते थे—जिनके लिए नींद, भोजन, बीमारी, दुख-सुख सब मायने रखते थे।

इस संस्मरण में लेखक की भाषा अत्यन्त संवेदनशील, भावनाप्रवण, परन्तु संयत है। ग्रामीण बोली, मुहावरे और लोकप्रचलित शब्दों के प्रयोग ने रचना को अत्यन्त प्रामाणिक और जीवंत बना दिया है। जैसे 'ब्योंडा लगाना', 'हाबुर-हाबुर खाना', 'हराई फानना', 'पहिया धरना', आदि शब्द न केवल रचना की लोकानुभूति को प्रबल करते हैं, बल्कि पाठक को उस ग्रामीण परिवेश से जोड़ देते हैं जो अब तेजी से मिटता जा रहा है।

यह रचना उन रिश्तों की भी पड़ताल करती है जो 'मनुष्य और पशु' के बीच भावनात्मक सेतु के रूप में निर्मित होते हैं। लेखक बार-बार यह संकेत करता है कि आधुनिकता, शहरी जीवन और आर्थिक विवशताओं के चलते ये सम्बन्ध दरक रहे हैं। सुघरका के साथ केवल ढाई वर्षों का साथ, करियवा-उजरका की मृत्यु और विछोह की पीड़ा—ये सब लेखक के हृदय में स्थायी रूप से बस चुके हैं। वह स्वयं स्वीकार करता है कि तीसरी बार फिर ऐसा कोई सम्बन्ध स्थापित करने का सपना उसने त्याग दिया है—यह उसका 'तीसरी कसम' जैसा व्रत है।

अंत में, यह कहा जा सकता है कि 'और ओ सुघरका...' सत्यदेव त्रिपाठी की आत्मा से निकली हुई एक ऐसी रचना है जो न केवल व्यक्तिगत स्मृतियों का दस्तावेज है, बल्कि समूचे भारतीय ग्रामीण समाज की उस संस्कृति की आखिरी परछाई भी है जो अब अतीत हो रही है। इस संस्मरण के माध्यम से लेखक ने यह बताया है कि कैसे पशु-पक्षी, खेत-खलिहान, रिश्ते-नाते, श्रम और संवेदना—ये सब मिलकर जीवन को पूर्ण बनाते हैं। यह संस्मरण केवल पढ़ा नहीं, जिया जाता है। यह एक गहरे प्रेम, अपनापन, और संस्कृति के प्रति श्रद्धा का आख्यान है—जो आने वाली पीढ़ियों के लिए विरासत की तरह है।

2.2 'नई बिरादरी' स्वयं प्रकाश (नुक्कड़ नाटक)

स्वयं प्रकाश हिन्दी साहित्य के एक प्रतिष्ठित कथाकार, नाटककार और सामाजिक सरोकारों से जुड़े सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनका जन्म 20 जनवरी 1947 को इन्दौर, मध्य प्रदेश में हुआ। उनकी चर्चित रचनाओं में 'सूरज कब निकलेगा', 'ईंधन', 'बीच में' आदि प्रमुख हैं। 'नई बिरादरी' नामक नुक्कड़ नाटक के माध्यम से उन्होंने सामाजिक असमानता और जातिगत भेदभाव जैसे मुद्दों पर तीखा प्रहार किया है।

नुक्कड़ नाटक एक ऐसी नाट्य विधा है जो भीड़-भाड़ वाले सार्वजनिक स्थलों पर मंच, पर्दे और प्रकाश के बिना प्रदर्शित की जाती है। इसका उद्देश्य आम जनमानस को सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक मुद्दों के प्रति जागरूक करना होता है। यह विधा प्रभावशाली संवाद, जनगीत और समूह अभिनय के माध्यम से जनता तक सीधा संवाद स्थापित करती है। भारत में इस विधा को पहचान दिलाने का श्रेय सफदर हाशमी को जाता है, जिनकी स्मृति में 12 अप्रैल को राष्ट्रीय नुक्कड़ नाटक दिवस मनाया जाता है।

'नई बिरादरी' नुक्कड़ नाटक की कथावस्तु भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक विषमता, जातिगत भेदभाव, आर्थिक शोषण और सत्ता के दमनकारी स्वरूप को उजागर करती है। यह नाटक एक दलित परिवार की कथा है जो अन्याय और शोषण के बीच जी रहा है। यह कहानी धूड़ा नामक एक मजदूर और उसकी पत्नी रमिया के इर्द-गिर्द घूमती है, जिनकी पूरी ज़िंदगी समाज के शक्तिशाली वर्गों — ठाकुर, ब्राह्मण, बनिया और सरकारी अफसर — के अत्याचारों के तले कुचली जा रही है। धूड़ा और रमिया समाज के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जो मेहनतकश है, ईमानदार है, परंतु अपनी मेहनत का फल पाने से हमेशा वंचित रहता है।

Edit with WPS Office

नाटक की शुरुआत एक प्रश्न से होती है कि किसी से उसके जन्म से पहले यह नहीं पूछा गया कि वह किस धर्म, जाति या वर्ग में जन्म लेना चाहता है। यह सवाल पूरे नाटक की संवेदनात्मक पृष्ठभूमि तय करता है। इसके बाद मंच पर सूत्रधार आता है जो समाज की वर्तमान स्थिति और पात्रों की भूमिका स्पष्ट करता है। इसके साथ ही समाज के विभिन्न चरित्र — ठाकुर, ब्राह्मण, बनिया और अफसर — भी मंच पर आते हैं और यह स्पष्ट करते हैं कि किस तरह से वे धूड़ा जैसे गरीब मजदूरों का अपने-अपने ढंग से शोषण करते हैं।

धूड़ा का परिवार रोज़ अपमान और शोषण झेलता है। ठाकुर उसे गालियाँ देता है, ब्राह्मण उसे यज्ञ की सफाई करवाने के लिए बुलाता है, बनिया पुराने कर्ज़ की धमकी देता है, और अफसर सरकारी योजनाओं के नाम पर उससे रिश्वत की अपेक्षा करता है। रमिया जब ठाकुर के बुलावे को ठुकरा देती है, तो यह संकेत मिलता है कि अब वंचित वर्ग में चेतना का जन्म हो रहा है। वह अपने पति को बार-बार समझाती है कि उसे इस अपमान के विरुद्ध आवाज उठानी चाहिए।

नाटक में बनिया एक मरे हुए दलित की लाश को हटवाने के लिए धूड़ा को शराब का लालच देता है, ताकि हत्या के सबूत मिट सकें। धूड़ा मजबूरीवश यह काम कर बैठता है और पुलिस उसे ही हत्यारा ठहराकर जेल भेज देती है। इस घटना के माध्यम से यह बताया गया है कि गरीबों को अपराधों में फँसाना कितना आसान होता है, क्योंकि उनके पास बचाव का कोई साधन नहीं होता।

रमिया अपने बेटे रामेसर से उम्मीद करती है जो शहर में पढ़ाई कर रहा है। वह गाँव लौटता है और अपने पिता की गिरफ्तारी की सच्चाई जानकर दुःखी होता है। उसके साथ उसका एक ब्राह्मण मित्र भी आता है जो खुद को 'आदमी' कहलाना पसंद करता है और जाति-पाँति के भेद को नकारता है। शुरुआत में रमिया इस पर संदेह करती है, लेकिन धीरे-धीरे उसे एहसास होता है कि बदलाव की शुरुआत ऐसे ही छोटे प्रयासों से होती है।

नाटक के अंतिम दृश्य में धूड़ा हथकड़ी-बेड़ी में जकड़ा हुआ मंच पर आता है और सभी शोषकों को उनके अत्याचारों का करारा जवाब देता है। यह दृश्य प्रतीकात्मक है, जिसमें धूड़ा उन चारों — ठाकुर, ब्राह्मण, बनिया और अफसर — को एक-एक कर सामाजिक न्याय का पाठ पढ़ाता है। अंत में वह जंगल की ओर प्रस्थान करता है, यह कहकर कि अब वह इस झूठी व्यवस्था का हिस्सा नहीं बनेगा। इसके उलट, रमिया और रामेसर यह निर्णय लेते हैं कि वे शहर जाकर मजदूरी करेंगे, लेकिन दोबारा जब लौटेंगे तो इंसान की तरह लौटेंगे — सम्मान के साथ, आत्मसम्मान के साथ, शोषण से मुक्त होकर।

यह नाटक स्पष्ट करता है कि दलितों की समस्याएँ केवल आर्थिक नहीं हैं, बल्कि गहरे सामाजिक और सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ी हुई हैं। जातिवादी सोच और सामाजिक ढांचे ने उन्हें बार-बार नीचा दिखाया है और यह व्यवस्था उन्हें अपनी मेहनत का पूरा फल लेने से रोकती है। लेकिन साथ ही नाटक यह भी दिखाता है कि जब दलित शिक्षित होते हैं, संगठित होते हैं और आवाज़ उठाते हैं, तब व्यवस्था की दीवारें दरकने लगती हैं।

नई बिरादरी केवल एक नाटक नहीं, बल्कि एक आंदोलन की शुरुआत है। यह एक विचार है जो कहता है कि अब समाज को धर्म, जाति, वर्ग और भेदभाव से ऊपर उठकर सोचने की आज आवश्यकता है। जब तक शोषित वर्ग संगठित नहीं होगा, तब तक उसका शोषण होता रहेगा। परंतु जैसे ही वे एकजुट होकर खड़े होते हैं, तो सत्ता के सारे प्रतीक — चाहे वह ठाकुर हो, ब्राह्मण हो, बनिया हो या सरकारी अधिकारी — कमजोर पड़ने लगते हैं।

इस नाटक के माध्यम से लेखक ने न केवल दलित चेतना को मंच पर लाया है, बल्कि दर्शकों और पाठकों से यह आह्वान भी किया है कि वे भी समाज के इस अन्यायपूर्ण ढांचे के विरुद्ध खड़े हों। यह नाटक परिवर्तन की उम्मीद जगाता है, एक नई बिरादरी की कल्पना करता है, जहाँ सबको समान अधिकार मिले, समान अवसर मिले और सबसे बड़ी बात — इंसान को इंसान समझा जाए।

3.0 भाग 3

3.1 प्रसाद के नाम पत्र : प्रेमचन्द

Edit with WPS Office

लेखक परिचय :

प्रेमचन्द का जन्म एक सामान्य आर्थिक परिस्थितियों से जूझनेवाले परिवार में वाराणसी के पास लमही नामक गाँव में 31 जुलाई, 1880 ई. में हुआ। आपके पिता डाक-विभाग में साधारण लिपिक थे। माँ सदा अस्वस्थ रहा करती थीं। खेती लायक भूमि इनके पिता के पास नहीं थी इसलिए नौकरी के अलावा कोई दूसरा जीविका का साधन उनके पास नहीं था। प्रेमचन्द अभी पाँच वर्ष के ही थे कि आपकी माँ परलोक सिधार गईं। चौदह वर्ष की अवस्था में प्रेमचन्द पितृहीन हो गए।

प्रेमचन्द ने अपने जीवन में कठिन संघर्ष किया। किसी तरह आपने बी.ए. तक शिक्षा प्राप्त की और अध्यापन कार्य करने लगे। धीरे-धीरे आपने डिप्टी इन्सपेक्टर का पद प्राप्त कर लिया। देश में चल रहे स्वतंत्रता-संग्राम में उनकी गहरी दिलचस्पी थी इसलिए तत्कालीन अंग्रेजी सरकार सन्देह की दृष्टि से देखा करती थी। इसी कारण 1916 में आपको नौकरी से त्याग-पत्र देना पड़ा। तब से प्रेमचन्द अपना सारा समय लेखन कार्य में लगाने लगे।

आपकी पहली रचना उर्दू के 'जमाना' पत्र में 'अनमोल रत्न' नाम से छपी तब से प्रेमचन्द लगातार कहानियाँ, उपन्यास, लेख, पत्र आदि लिखते रहे। 'हंस' पत्रिका द्वारा उन्होंने साहित्यिक पत्रकारिता का जो प्रतिमान स्थापित किया वह आज भी लोगों के लिए मार्गदर्शक है। लेखन के अलावा आपने अपने समय के साहित्यिक आन्दोलन को सदा आगे बढ़ाया और नये लेखकों को प्रोत्साहित करते रहे।

प्रेमचन्द ने धीरे-धीरे हिन्दी में लिखना शुरू किया। ग्राम्यजीवन के सहज सम्पर्क के कारण जनता के व्यवहार की सहज भाषा से उनका गहरा परिचय था। आपकी भाषा में हिन्दी-उर्दू तथा सामान्य जनता की बोल-चाल की भाषा के सम्मिश्रण ने एक ऐसी अपूर्व सहजता एवं सरलता भर दी है जो हिन्दी के अन्य साहित्यकारों में उपलब्ध नहीं होती।

प्रमुख रचनाएँ -

उपन्यास : 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'प्रतिज्ञा', 'गबन', 'कर्मभूमि', 'गोदान', 'मंगलसूत्र' (अपूर्ण)।

कहानी-संग्रह : 'सप्तरोज', 'नवनिधि', 'समरयात्रा', 'मानसरोवर' (आठ खंडों में प्रकाशित)।

चर्चित कहानियाँ : 'ईदगाह', 'ठाकुर का कुआँ', 'पूस की रात', 'कफ़न', 'बूढ़ी काकी', 'पंच परमेश्वर', 'दो बैलों की कथा', 'बड़े घर की बेटी', 'नमक का दारोग़ा', 'कर्मों का फल', 'बलिदान', 'शतरंज के खिलाड़ी'।

नाटक : 'संग्राम', 'कर्बला', 'बलिदान'।

बाल-साहित्य : 'रामकथा', 'कुत्ते की कहानी', 'मनमोदक'।

निधन : 8 अक्टूबर, 1936 को 56 वर्ष की आयु में वाराणसी में हुआ।

पत्र विधा का परिचय :

पत्र एक जीवनीपरक विधा है। अन्य विधाओं की तरह यहाँ भी हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखकों, राजनेताओं, सामाजिककर्ताओं के पत्रों को प्रस्तुत किया जाता है।

वास्तव में यह पत्र लेखन व्यक्तिगत होते हैं। परन्तु इन व्यक्तिगत पत्रों का भी साहित्य में अत्यधिक महत्त्व होता है। इस पत्र विधा के माध्यम से हम पत्र लेखक के व्यक्तित्व को समझ पाते हैं।

हिन्दी में इस साहित्यिक विधा को 'पत्र', 'चिट्ठी', 'पत्र-साहित्य', मराठी में इसे 'पत्र', 'पत्रात्मक साहित्य' तथा अंग्रेजी में इसे 'लेटर' कहते हैं। हिन्दी में अखबार को समाचार पत्र तथा विविध प्रकार की पत्रिकाओं को 'साहित्यिक पत्र', 'धार्मिक पत्र' या 'राजनीतिक पत्र' अथवा 'पत्र पत्रिकाएँ' आदि कहा जाता है। यहाँ 'पत्र' शब्द का अर्थ पत्र साहित्य में प्रयुक्त शब्द से एकदम


Edit with WPS Office

भिन्न है। अखबारों तथा अन्य मैगज़िनों के साथ पत्र शब्द जोड़ देने का कारण शायद यह होगा कि पत्र अर्थात् लेटर किसी बात को एक व्यक्ति से दूसरे तक या एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने का माध्यम है।

मूल संवेदना :

प्रेमचन्द और जयशंकर दोनों समकालीन तथा प्रख्यात साहित्यकार वाराणसी में रहा करते थे। परन्तु दोनों के लेखन साहित्य में मूलभूत अन्तर था। प्रेमचन्द अपनी कहानियों और उपन्यासों में समाज के वास्तविक समस्याओं का चित्रण करते थे, तो प्रसाद की रुचि इतिहास में अधिक थी। वे ऐतिहासिक नाटक लिखते थे। प्रेमचन्द को यह पसन्द नहीं था। वे प्रसाद को 'गड़े मुर्दे उखाड़ने वाला लेखक' कहते थे। जिसके जवाब में प्रसाद ने 'कंकाल' नामक उपन्यास लिखा जो एक सामाजिक उपन्यास था, जिसे पढ़कर प्रेमचन्द अत्यन्त प्रसन्न हो गए और इसी ख़ुशी को व्यक्त करने के लिए उन्होने प्रसाद के नाम पत्र लिखा। जो प्रस्तुत है।

'प्रसाद के नाम पत्र' की व्याख्या :

प्रेमचंद द्वारा जयशंकर प्रसाद को लिखा गया यह पत्र केवल दो महान समकालीन साहित्यकारों के व्यक्तिगत संबंध का दस्तावेज नहीं है, बल्कि यह हिंदी साहित्य के वैचारिक विमर्श, सामाजिक सरोकारों और प्रगतिशील चिंतन का एक ज्वलंत उदाहरण है।

साहित्यिक पूर्वाग्रह की समाप्ति और सहृदयता :

पत्र का प्रारंभ प्रेमचंद की अगाध उदारता और साहित्यिक ईमानदारी से होता है। वे प्रसाद जी के उपन्यास 'कंकाल' की प्रशंसा करते हुए स्वीकार करते हैं कि अतीत के नाटकों (जैसे 'समुद्रगुप्त') को लेकर जो उनकी शिकायत थी कि प्रसाद जी 'गड़े मुर्दे उखाड़ते हैं', वह 'कंकाल' पढ़कर पूरी तरह समाप्त हो गई। एक प्रखर आलोचक और शीर्ष लेखक का अपनी पूर्व धारणा को खुलकर वापस लेना और क्षमा माँगना प्रेमचंद की बौद्धिक विनम्रता को दर्शाता है।

अतीत-मोह बनाम वर्तमान की वास्तविक चुनौतियाँ :

पत्र का केंद्रीय वैचारिक स्वर अतीत के अंधानुकरण पर कड़ा प्रहार करता है। प्रेमचंद कहते हैं कि पूर्वजों के गौरव का महत्व तभी है जब वह भविष्य निर्माण में सहायक हो। वे वीरता, दान, तप और वर्णाश्रम धर्म जैसी रूढ़ हो चुकी परंपराओं पर प्रश्न उठाते हैं। उनका मानना है कि 'तप' और साधु-संन्यासियों की पोषित व्यवस्था ने समाज पर लाखों अकर्मण्य और बेरोजगार लोगों का बोझ लाद दिया है, जिससे गरीब जनता की गाढ़ी कमाई व्यर्थ हो रही है। वे वर्णाश्रम धर्म को समाज की जड़ें खोखली करने वाली व्यवस्था मानते हैं।

'कंकाल' का सामाजिक एवं मानवीय मूल्यांकन :

प्रेमचंद 'कंकाल' को मात्र एक औपन्यासिक कृति नहीं, बल्कि समाज के एक सच्चे हितैषी के आँसुओं की अभिव्यक्ति मानते हैं। उपन्यास के पात्रों—घंटी और यमुना—के मार्मिक चित्रण की प्रशंसा करते हुए वे इसे वर्तमान यथार्थ को उकेरने वाली एक शक्तिशाली रचना घोषित करते हैं।

'हंस' पत्रिका और काशी के प्रति साहित्यिक दायित्व :

पत्र का उत्तरार्द्ध प्रेमचंद के संपादकीय संकल्प को व्यक्त करता है। वे अपनी आर्थिक विवशता ('मैं धनी नहीं हूँ, मजदूर आदमी हूँ') को स्वीकारते हुए भी यह पीड़ा व्यक्त करते हैं कि काशी जैसे बौद्धिक केंद्र से कोई उच्च स्तरीय साहित्यिक पत्रिका नहीं निकल रही। 'मस्जिद में दिया जले और घर में अँधेरा' वाली कहावत के माध्यम से वे काशी के साहित्यकारों को अपनी ही भूमि पर साहित्य-सृजन के लिए प्रेरित करते हैं। वे प्रसाद जी से धन नहीं, बल्कि 'हंस' के लिए उनकी साहित्यिक रचनाओं ('लेखनी की विभूति') का सहयोग माँगते हैं।


Edit with WPS Office

प्रश्न

प्रश्न: 'प्रसाद के नाम पत्र' के आधार पर प्रेमचंद के प्रगतिशील सामाजिक दृष्टिकोण, वैचारिक खुलेपन तथा 'हंस' पत्रिका के प्रकाशन के पीछे उनके साहित्यिक संकल्पों पर विस्तार से प्रकाश डालिए।

3.2 'लघु भारत मॉरीशस का संस्कृति-प्रेम' - डॉ. शकुन्तला कालरा (यात्रा-वृत्तांत)

लेखिका-परिचय :

डॉ. शकुन्तला कालरा का जन्म 11 सितम्बर, 1946 को बक्खर नामक गाँव में हुआ था जो अब पाकिस्तान में स्थित है। डॉ. शकुन्तला कालरा ने हिन्दी और शिक्षाशास्त्र में पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की है। वे एक साथ कहानी, कविता, आलोचना, निबन्ध, शोध, समीक्षा और यात्रा-वृत्तान्त जैसी अनेक विधाओं के लिए पारखी दृष्टि रखनेवाली लेखिका हैं। आपने बाल साहित्य की आवश्यकता को आत्मसात करते हुए इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। आपके काव्य में राष्ट्रीय, सांस्कृतिक, पर्यावरणीय, मानवीय और नैतिक चेतना के समग्र भाव समाहित हैं। आपकी रचनाएँ विज्ञान, संस्कृति और मनोविज्ञान को सहज भाव से रेखांकित करती हैं।

डॉ. शकुन्तला कालरा का विशेष ध्यान बाल मनोविज्ञान आधारित बाल साहित्य की रचना पर रहा है, जो बच्चों के मनोरंजन के साथ-साथ आपके बौद्धिक व नैतिक गुणों का विकास भी करता है। आपने बच्चों के व्यक्तित्व विकास और उनकी रचनात्मक क्षमताओं को पहचानने पर जोर दिया है। वे मानती हैं कि बाल साहित्य का अन्तिम लक्ष्य बच्चों का चहुँमुखी विकास है, जिसमें आत्मिक, मानसिक और बौद्धिक विकास शामिल है। आपकी रचनाएँ बच्चों को तार्किक और वैज्ञानिक सोच विकसित करने में मदद करती हैं।

प्रमुख रचनाएँ :

'बच्चे और आप', 'हिन्दी बाल साहित्य : विचार और चिन्तन', 'हिन्दी बाल साहित्य : विधा-विवेचन', 'हिन्दी बाल साहित्य : विमर्श साहित्यिक', 'साक्षात्कार', 'यात्रा-वृत्तान्त' आदि।

मैथिलीशरण गुप्त का राम और कृष्ण काव्य, मेरी प्रिय बाल कविताएँ (इकत्तीस) बाल कविताओं का संग्रह, मेरी प्रिय कहानियाँ, भक्तिकालीन प्रतिनिधि कवि और उनकी ब्रह्म-दृष्टि इत्यादि।

पुरस्कार एवं सम्मान : जिनमें प्रमुख हैं : 'बाल साहित्य भारती पुरस्कार', 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बाल साहित्य पुरस्कार' (प्रथम) (2000 में केन्द्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा), बाल साहित्य के क्षेत्र में उनकी विशिष्ट सेवाओं के लिए उन्हें 'नागरी बाल साहित्य संस्थान', बलिया, उत्तर प्रदेश द्वारा 2002 में 17वें बाल-साहित्यकार सम्मान-समारोह में सम्मानित किया गया। 'भारतीय बाल कल्याण संस्थान', कानपुर द्वारा 2002 में 33वें बाल साहित्यकार सम्मान-समारोह में सम्मानित किया गया।

हिन्दी यात्रा-वृत्तान्त विधा का परिचय :

यात्रा-वृत्तान्त (Travelogue) साहित्य की एक गद्यात्मक विधा है। जिसमें लेखक अपनी यात्राओं के अनुभवों, देखी गई जगहों, मिले-जुले लोगों और उनसे जुड़े विचारों एवं भावनाओं को कलमबद्ध करता है। यह एक व्यक्तिगत यात्रा का विस्तृत और सजीव वर्णन होता है।

यात्रा-वृत्तान्त एक ऐसी साहित्यिक रचना है जिसमें लेखक अपनी किसी यात्रा के दौरान हुए प्रत्यक्ष अनुभवों, देखी गई जगहों के भौगोलिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विवरणों, वहाँ के लोगों की जीवन-शैली, रीति-रिवाजों और अपनी निजी अनुभूतियों तथा विचारों को कलात्मक और रोचक ढंग से प्रस्तुत करता है। इसमें सिर्फ स्थानों का वर्णन नहीं होता, बल्कि लेखक की दृष्टि से उन स्थानों का महत्त्व, वहाँ के वातावरण का प्रभाव और स्वयं लेखक की मानसिकता पर पड़े असर का भी

Edit with WPS Office

चित्रण होता है।

हिन्दी साहित्य में यात्रा-वृत्तान्त लेखन की एक समृद्ध परम्परा रही है। यह विधा न केवल पाठकों को विभिन्न स्थानों की जानकारी देती है बल्कि उन्हें उन स्थानों की आत्मा से भी परिचित कराती है।

यात्रा-वृत्तान्त लेखक के स्वयं के अनुभवों पर आधारित होता है। इसमें स्थानों, दृश्यों और घटनाओं का इतना सजीव चित्रण होता है कि पाठक स्वयं को उस यात्रा का हिस्सा महसूस करने लगता है। लेखक अपनी यात्रा के दौरान महसूस की गई भावनाओं, विचारों और प्रतिक्रियाओं को भी इसमें शामिल करता है। इसमें भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामाजिक जानकारियाँ भी मिलती हैं। एक अच्छा यात्रा-वृत्तान्त केवल तथ्यों का संग्रह नहीं होता, बल्कि उसमें साहित्यिक सौन्दर्य और कलात्मकता का भी समावेश होता है। लेखक अपनी भाषा शैली और वर्णन की विशिष्टता से उसे रोचक बनाता है। यात्रा-वृत्तान्त का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं होता, बल्कि यह पाठकों को नई जगहों के बारे में जानने, दुनिया को एक नये दृष्टिकोण से देखने और कई बार तो यात्रा के लिए प्रेरित करने का भी काम करता है।

हिन्दी में यात्रा-वृत्तान्त लेखन का आरम्भ भारतेंदु हरिश्चन्द्र से माना जाता है, जिन्होंने अपनी यात्राओं का रोचक वर्णन किया। इसके बाद राहुल सांकृत्यायन ने इस विधा को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया। उन्होंने दुनिया के विभिन्न कोनों की यात्राएँ कीं और अपने अनुभवों को 'मेरी तिब्बत यात्रा', 'किन्नर देश में' आदि ग्रन्थों में प्रस्तुत किया। राहुल सांकृत्यायन को हिन्दी यात्रा साहित्य का जनक भी कहा जाता है।

इनके अतिरिक्त, अज्ञेय, मोहन राकेश, यशपाल, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', निर्मल वर्मा, शिवप्रसाद सिंह और रामवृक्ष बेनीपुरी जैसे अनेक लेखकों ने हिन्दी यात्रा-वृत्तान्त को समृद्ध किया है।

वर्तमान समय में भी यात्रा-वृत्तान्त लेखन काफी लोकप्रिय है और ब्लॉगर तथा स्वतंत्र लेखक भी अपनी यात्राओं को डिजिटल माध्यमों से पाठकों तक पहुँचा रहे हैं। यह गद्य विधा लगातार विकसित हो रही है और नये प्रयोगों के साथ पाठकों को आकर्षित कर रही है।

मूल संवेदना

डॉ. शकुन्तला कालरा द्वारा लिखित यात्रा-वृत्तान्त एक मौलिक यात्रा-वृत्तान्त है जो मॉरीशस की गरिमा दर्शानेवाली उसकी संस्कृति-सभ्यता और रीति-रिवाजों का जैसे एक जीता-जागता दस्तावेज है। यह वृत्तान्त मॉरीशस में भारतीय संस्कृति, सभ्यता और परम्पराओं के गहरे जुड़ाव और उसके संरक्षण को दर्शाता है। मॉरीशस को 'लघु भारत' की सुन्दर उपमा लेखिका देती हैं। क्योंकि वहाँ भारतीय संस्कृति की प्रतिच्छवि स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। मॉरीशस एक ऐसा देश है जहाँ भारतीय मूल के लोग अपनी सांस्कृतिक पहचान को मजबूती से बनाए हुए हैं। प्रवासी भारतीयों का संघर्ष और सांस्कृतिक दृढ़ता, इस यात्रा-वृत्तान्त में 19वीं शताब्दी में भारतीय पूर्वजों को गिरमिटिया मजदूर के रूप में मॉरीशस लाए जाने और उनके साथ हुए अमानवीय अत्याचारों का वर्णन है। इसके बावजूद, उनकी आत्मिक शक्ति और संस्कृति-प्रेम ने उन्हें अपनी पहचान बनाए रखने में मदद की है। यह इस बात पर भी प्रकाश डालता है कि किस प्रकार सांस्कृतिक प्रेम ने उन्हें विपरीत परिस्थितियों में भी अडिग रखा है। भारतीय त्योहारों और धार्मिक अनुष्ठानों का प्रचलन मॉरीशस में शिवरात्रि, दीवाली, करवा चौथ, होली, रामनवमी जैसे भारतीय त्योहारों को बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। इसके अतिरिक्त, रामायण पाठ, सुन्दरकांड का पाठ और संत-महात्माओं द्वारा धार्मिक अनुष्ठान भी नियमित रूप से होते हैं, जो भारतीय धार्मिक आस्थाओं की जीवन्तता को प्रदर्शित करता है।

गंगा-तालाब (ग्रांड बाँसा) का अपना ही अलग महत्त्व है। इस गंगा-तालाब को जिसे पहले ग्रांड बाँसा या परी तालाब कहा जाता था, मॉरीशस में एक महत्त्वपूर्ण धार्मिक स्थल है। यहाँ स्थित मारीशेखर महादेव मन्दिर और 108 फुट ऊँची शिव प्रतिमा मॉरीशसवासियों की शिव के प्रति गहरी श्रद्धा का प्रतीक है। महाशिवरात्रि पर यहाँ लगनेवाला मेला और भक्तों का पैदल चलकर जल चढ़ाना उनकी अटूट आस्था को दर्शाता है। गंगाजल का इस तालाब में प्रवाहित होना और इसे गंगा-तालाब कहा जाना भारत की पावन गंगा के प्रति उनकी भक्ति-भावना और आस्था को दर्शाता है।

भाषा और रीति-रिवाजों का संरक्षण देखा गया है। मॉरीशस में घर-घर और गाँव-गाँव में लोग हिन्दी बोलते हैं और अपनों के

Edit with WPS Office

बीच संवाद की भाषा भोजपुरी है। 'मन्दिर' शब्द का उच्चारण 'मन्दिल' करना भोजपुरी भाषा के प्रभाव को दर्शाता है। यह इस बात पर जोर देता है कि कैसे वे अपनी मूल भाषा और उसके उच्चारण को भी सहेजे हुए हैं। यहाँ सांस्कृतिक समन्वय और सहिष्णुता भी अपनी विशेषता रखती है। हिन्दू संस्कृति के साथ-साथ ईसाई और मुस्लिम संस्कृतियों का भी समन्वय देखने को मिलता है। मुहर्रम और ताजिया जुलूस का वर्णन यह दर्शाता है कि मॉरीशस में विभिन्न धर्मों के लोग मिलजुलकर रहते हैं और अपने त्योहार मनाते हैं। यहाँ तक कि हिन्दू भी मुहर्रम के त्योहार में सहयोग करते थे। यह मॉरीशस की सांस्कृतिक विविधता और सहिष्णुता को उजागर करता है। लेखिका इस बात पर जोर देती हैं कि मॉरीशसवासियों ने भारतीय संस्कृति, सभ्यता और परम्पराओं को अपने पूर्वजों की धरोहर के रूप में बहुत सहेजकर रखा है, जितना कि भारत में भी व्यवहार में नहीं है। यहाँ यह दर्शाता है कि वे अपनी जड़ों से कितने गहरे जुड़े हुए हैं और अपनी विरासत को कितनी गम्भीरता से लेते हैं।

कुल मिलाकर, इस यात्रा-वृत्तान्त की मूल संवेदना यह है कि मॉरीशस में भारतीय संस्कृति के अद्भुत संरक्षण, आप्रवासी भारतीयों के संघर्ष और दृढ़ता, तथा धार्मिक आस्थाओं एवं परम्पराओं और सांस्कृतिक समन्वय के जीवन्त स्वरूप को दर्शाती हैं, जो इसे एक 'लघु भारत' बनाता है।

यात्रा-वृत्तांत 'लघु भारत मॉरीशस का संस्कृति-प्रेम' की व्याख्या :

डॉ. शकुन्तला कालरा द्वारा रचित यह यात्रा-वृत्तांत केवल एक भौगोलिक यात्रा का विवरण न होकर भारतीय अस्मिता, सांस्कृतिक जिजीविषा और औपनिवेशिक संघर्ष का सजीव दस्तावेज़ है। लेखिका मॉरीशस को केवल एक रमणीक द्वीप के रूप में नहीं देखतीं, बल्कि उसे ‘लघु भारत’ के रूप में पहचानती हैं, जहाँ की माटी में भारत की आत्मा स्पंदित होती है।

ऐतिहासिक संघर्ष, गिरमिटिया त्रासदी और आत्मिक विजय :

लेखिका 19वीं सदी (विशेषकर 1834 ई.) के उस दारुण इतिहास को सामने लाती हैं, जब अंग्रेजों के छल-कपट और सब्ज़बाग़ के शिकार होकर भारतीय मजदूर गिरमिटिया बनकर इस द्वीप पर पहुँचे। 'आप्रवासी घाट' की सीढ़ियाँ और डिपो की दीवारें पूर्वजों की मूक वेदना और छटपटाहट की साक्षी हैं। नंगे पाँव, कोल्हू के बैल की तरह जुते शरीर और पीठ पर कोड़ों की मार सहते हुए भी इन श्रमिकों ने अपनी सांस्कृतिक जड़ें नहीं छोड़ीं। लेखिका रेखांकित करती हैं कि जिस पथरीली और असमतल भूमि को उन्होंने अपने पसीने से सींचा, वह आज मॉरीशस के रूप में सोना उगल रही है। शारीरिक दासता के बावजूद वे मानसिक और सांस्कृतिक रूप से कभी पराधीन नहीं हुए; उनका संस्कृति-प्रेम ही उनकी सबसे बड़ी ढाल बना।

धर्म, पर्व-त्योहार और 'रामचरितमानस' का प्रभाव :

मॉरीशस के दैनिक जीवन में भारतीय पर्व—शिवरात्रि, दीपावली, करवाचौथ, होली और रामनवमी—की वही पावन गूँज सुनाई देती है जो भारत में मिलती है। लेखिका बताती हैं कि घर-घर में अखंड रामायण और सुंदरकांड का पाठ होता है। गोस्वामी तुलसीदास जी का ‘रामचरितमानस’ वहाँ के जन-जीवन के लिए सर्वोपरि मार्गदर्शक ग्रंथ है। मॉरीशस के 'हिन्दू भवन' में भारत के मूर्धन्य संतों (जैसे मुरारी बापू) के प्रवचन आयोजित होना इस बात का प्रमाण है कि यह समाज आज भी भारत के आध्यात्मिक प्रवाह से अटूट रूप से जुड़ा हुआ है।

गंगा-तालाब (ग्रांड बाँसा) और मारीशेखर महादेव की महिमा :

प्राकृतिक क्रेटर झील 'ग्रांड बाँसा' (परी तालाब) का रूपांतरण जब 1962 में भारत से गंगाजल लाकर प्रवाहित करने के बाद ‘गंगा-तालाब’ के रूप में हुआ, तो यह स्थल मॉरीशसवासियों के लिए साक्षात काशी और प्रयाग बन गया। 108 फुट ऊँची भव्य शिव प्रतिमा और 'तेरहवें ज्योतिर्लिंग' के रूप में प्रतिष्ठित 'मारीशेखर महादेव' उनके आस्था-पुंज हैं। महाशिवरात्रि पर हज़ारों श्रद्धालुओं का सफेद वस्त्रों में काँवर लेकर नंगे पाँव मीलों चलना और 'हर हर महादेव' का उद्घोष करना मॉरीशस को साक्षात देवभूमि का स्वरूप प्रदान करता है।

भाषाई अस्मिता और सांस्कृतिक समन्वय :

Edit with WPS Office

मॉरीशस की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वहाँ की घरेलू भाषा आज भी भोजपुरी है और सार्वजनिक मंचों की भाषा हिन्दी। 'मंदिर' का भोजपुरी लहजे में 'मन्दिल' उच्चारण यह प्रमाणित करता है कि सदियों बाद भी उन्होंने अपनी लोक-बोली की मौलिकता को विस्मृत नहीं होने दिया।

इसके साथ ही, लेखिका वहाँ के सांप्रदायिक सौहार्द और सांस्कृतिक समन्वय की सराहना करती हैं। ताजिया जुलूस और मुहर्रम में हिन्दू-मुस्लिम समुदायों का साझा सहयोग यह सिद्ध करता है कि भारत की सर्वधर्म समभाव की परंपरा वहाँ अत्यंत सहज और जीवंत रूप में सुरक्षित है।

निष्कर्ष :

लेखिका एक मार्मिक सत्य की ओर संकेत करती हैं कि भारत में आधुनिकता की आंधी में जो परंपराएँ शिथिल हो रही हैं, उन्हें मॉरीशसवासियों ने अपने पूर्वजों की पवित्र धरोहर मानकर आज भी अत्यधिक निष्ठा और मर्यादा के साथ सहेज कर रखा है। इस प्रकार, यह यात्रा-वृत्तांत पाठकों को न केवल मॉरीशस के गौरवशाली स्वरूप से परिचित कराता है, बल्कि अपनी ही सांस्कृतिक विरासत के प्रति आत्मचिंतन करने को विवश करता है।

प्रश्न :

प्रश्न: 'मॉरीशस को लघु भारत कहना कहाँ तक तर्कसंगत है ?' डॉ. शकुन्तला कालरा के यात्रा-वृत्तांत 'लघु भारत मॉरीशस का संस्कृति-प्रेम' के आधार पर आप्रवासी भारतीयों के संघर्ष, धार्मिक आस्था, भाषाई संरक्षण तथा सांस्कृतिक समन्वय का सोदाहरण विवेचन कीजिए।

4.0 भाग 4

4.1 'कच्चे धागे'- उषा प्रियंवदा (कहानी)

मध्यवर्गीय स्त्री जीवन की व्यथा

उषा प्रियंवदा के 'जिंदगी और गुलाब के फूल' कहानी संग्रह की एक कहानी 'कच्चे धागे' भारतीय मध्यवर्गीय नारी जीवन की उस करुण सच्चाई को उजागर करती है, जिसे अक्सर समाज नजरअंदाज कर देता है। यह कहानी नारी मन की सूक्ष्मतम भावनाओं, इच्छाओं, आकांक्षाओं और समाज द्वारा उसे दी गई अनदेखी पीड़ा की अभिव्यक्ति है। 'कच्चे धागे' की नायिका कुन्तल, एक साधारण भारतीय युवती है, जो न तो किसी विद्रोह की प्रतीक है, न ही आधुनिक आत्मनिर्भर स्त्री की मुखर आवाज़। वह उन असंख्य स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है, जो अपनी पूरी जीवन यात्रा त्याग, कर्तव्य, मर्यादा और आत्मनिग्रह के साथ तय करती हैं, पर अंततः खुद के लिए कुछ भी नहीं बचा पातीं।

कहानी का परिवेश ही अपने आप में एक संकेत है – एक साधारण, जर्जर, बदरंग घर जहाँ नल हमेशा टपकता रहता है, दीवारों पर सीलन है, और हर चीज़ जैसे अपनी अंतिम साँसों पर जी रही है। इसी वातावरण में कुन्तल का जीवन भी बीत रहा है, जो नित्यचर्या के कामों में व्यस्त है – अपने भाई बहनों की देखभाल, घर की सफाई, खाना पकाना, कपड़े सिलना। उसके जीवन में कोई बड़ा सपना, आकांक्षा या उत्साह नहीं है, फिर भी वह हर दिन पूरी निष्ठा और सच्चाई से अपने कार्य करती है। यह वह स्त्री है, जिसकी भूमिका को समाज 'स्वाभाविक' मानता है, जिसके त्याग और मेहनत को अक्सर उसकी 'जिम्मेदारी' समझकर नजरअंदाज कर देता है।

कुन्तल के जीवन में तब एक बदलाव आता है, जब उसकी पड़ोसिन जीजी का भाई सिद्धार्थ आता है। पढ़ा-लिखा, स्मार्ट, आकर्षक और नौकरी की तैयारी कर रहा युवक। सिद्धार्थ की उपस्थिति कुन्तल के भीतर दबे हुए उन भावों को जागृत कर देती है, जो वर्षों से कहीं भीतर छिपे थे। वह सजती है, चूड़ियाँ पहनती है, अपने पुराने कपड़ों को रंगती है। यह सब मामूली बातें लग

Edit with WPS Office

सकती हैं, पर वास्तव में यह उसकी आंतरिक दुनिया में आए बदलाव के संकेत हैं। वर्षों से ममता और जिम्मेदारियों में डूबी वह पहली बार स्वयं को स्त्री के रूप में अनुभव करने लगती है। उसका प्रेम मुखर नहीं है, पर गहरा और सच्चा है – एक तरफा, मौन और आशाओं से भरा हुआ।

कुन्तल को यह लगता है कि शायद अब उसके जीवन में भी वह क्षण आएगा, जहाँ उसे भी किसी का साथ मिलेगा, कोई उसके त्याग, सेवा और प्रेम को समझेगा, स्वीकार करेगा। लेकिन यहीं कहानी अचानक एक मोड़ लेती है। गजाधर चाचा जब विवाह का प्रस्ताव लेकर सिद्धार्थ के परिवार के पास जाते हैं, तो वहाँ से जो जवाब आता है, वह कहानी की मूल व्यथा को सबसे सशक्त रूप में प्रकट करता है। सिद्धार्थ की बहनें कहती हैं – "हमें कुछ नहीं चाहिए, बस लड़की गोरी-सुंदर होनी चाहिए।" यह वाक्य सिर्फ कुन्तल के प्रेम का अपमान नहीं है, बल्कि उस संपूर्ण स्त्री अस्तित्व को नकारने का प्रतीक है, जिसमें भावनाएँ, गुण, आत्म-सम्मान और समर्पण भी मायने नहीं रखते, अगर स्त्री रंग में थोड़ी साँवली हो।

यह समाज की वह त्रासदी है, जो आज भी कायम है – जहाँ स्त्री की पूरी पहचान और योग्यता उसके रूप-रंग में सिमट जाती है। उसे सिर्फ इसलिए खारिज कर दिया जाता है क्योंकि वह 'सुंदर' नहीं है। उसका मन, आत्मा, समझ, व्यवहार – सब कुछ गौण हो जाता है, जब तक वह समाज के 'रूप सौंदर्य' के मापदंडों पर खरा न उतरे। यह केवल कुन्तल की हार नहीं है, यह उस मानसिकता की जीत है जो स्त्री को केवल एक वस्तु के रूप में देखती है।

कहानी का सबसे मर्मस्पर्शी क्षण वह है, जब कुन्तल की खरीदी हुई सतरंगी चूड़ियाँ टूट जाती हैं और वह घुटनों में मुँह छिपाए बैठी रहती है। यह क्षण केवल एक दृश्य नहीं है, बल्कि एक नारी के पूरे सपनों और आत्मसम्मान के बिखरने की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। चूड़ियाँ केवल श्रृंगार की वस्तु नहीं थीं, वे उसकी दबी हुई भावनाओं की प्रतीक थीं, उसका आत्म-प्रेम, उसकी आशा, और उसका एक छोटा-सा सपना, कि शायद एक दिन कोई उसे भी अपनाएगा – उसी रूप में, जैसी वह है।

कुन्तल कुछ नहीं कहती, वह चुप रहती है। लेकिन उसकी चुप्पी में एक ऐसी पुकार है, जो हर संवेदनशील मन को विचलित कर देती है। यह स्त्री का मौन विद्रोह नहीं, बल्कि उसका मौन संन्यास है – उस समाज से, जिसने उसे केवल 'कच्चे धागे' की तरह इस्तेमाल किया और फिर फेंक दिया। वह कच्चा धागा जो भावनाओं, संवेदनाओं और उम्मीदों से बुना गया था, लेकिन समाज की कठोर अपेक्षाओं के आगे टूट गया।

उषा प्रियंवदा की लेखनी की विशेषता यह है कि वह किसी स्त्री को उग्र विद्रोह करते नहीं दिखातीं, लेकिन उनके पात्रों की चुप्पी ही सबसे बड़ा आक्रोश बन जाती है। कुन्तल का शांत चेहरा, उसका खामोश व्यवहार और उसकी टूटी चूड़ियाँ, सब मिलकर उस गूंगे दर्द को व्यक्त करते हैं जिसे शब्दों की ज़रूरत नहीं।

कहानी में प्रयुक्त प्रतीक भी अत्यंत प्रभावशाली हैं। चूड़ियाँ, उड़ती धोती, टपकता नल, दीमक खाई चौखट – ये सब केवल भौतिक चीज़ें नहीं, बल्कि उस मध्यवर्गीय स्त्री जीवन के प्रतीक हैं जो हर दिन कुछ न कुछ खोता है, गलता है, टूटता है, पर फिर भी जीता है। सिद्धार्थ के कमरे से झाँकती तेज रोशनी और कुन्तल के अंधेरे आँगन का विरोधाभास, केवल सामाजिक भिन्नता का नहीं, बल्कि भावनात्मक और मानसिक दूरी का भी प्रतीक है।

यह कहानी केवल कुन्तल की नहीं है। यह उन लाखों स्त्रियों की कहानी है जो हर दिन घर सम्भालती हैं, दूसरों को सुख देती हैं, पर उनके अपने जीवन में कोई रंग नहीं होता। वे अपने मन की इच्छाओं को घर की चौखट में बाँधकर रखती हैं और जब भी कोई उम्मीद जागती है, तो समाज उसे निर्दयता से कुचल देता है। कुन्तल का सपना भी ऐसे ही कुचला गया, चुपचाप, बिना किसी विरोध के।

कहानी यह भी दर्शाती है कि भारतीय समाज में नारी का स्थान अभी भी सीमित दायरे में है। चाहे वह कितनी भी गुणी हो, जिम्मेदार हो, अपने कर्तव्यों के प्रति निष्ठावान हो, जब विवाह की बात आती है तो समाज केवल उसकी बाहरी सुंदरता को देखता है। यह मानसिकता न केवल स्त्रियों को अपमानित करती है, बल्कि उन्हें भावनात्मक रूप से तोड़ देती है। कुन्तल जैसी स्त्रियाँ बाहर से भले ही शांत दिखाई दें, लेकिन उनके भीतर एक असह्य दुख, एक चुपचाप बहता आक्रोश, और टूटे हुए सपनों का मलबा होता है।


Edit with WPS Office

'कच्चे धागे' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह कहानी कोई बड़ा घटनाक्रम या नाटकीय मोड़ नहीं प्रस्तुत करती, बल्कि छोटी-छोटी घटनाओं के माध्यम से एक बड़ी सामाजिक सच्चाई को उजागर करती है। कुन्तल की कहानी में हर पाठक को कहीं न कहीं अपनी मां, बहन, पत्नी, बेटी या पड़ोस की उस स्त्री की छवि दिखाई देती है जो हर दिन मुस्कुराते हुए अपने सपनों का त्याग करती है।

कहानी का अंत अत्यंत भावुक और विचारोत्तेजक है। बच्चों को टूटी हुई चूड़ियाँ आकर्षक लगती हैं, वे किलकते हैं, खेलते हैं, लेकिन उन चूड़ियों के टुकड़ों में कुन्तल अपनी आत्मा की किरचें देखती है। उसकी खामोशी में एक स्थायी पीड़ा बस जाती है। वह टूटती है, पर बिखरती नहीं। यही उसकी ताकत भी है, और त्रासदी भी। उषा प्रियंवदा ने इस कहानी के माध्यम से यह संदेश दिया है कि स्त्री को समझने के लिए केवल उसके रूप और कर्तव्यों को देखना पर्याप्त नहीं, बल्कि उसकी भावनाओं, सपनों और उसके भीतरी संसार को भी समझना जरूरी है। वह केवल एक माँ, बहन, पत्नी या गृहिणी नहीं है – वह एक संपूर्ण मनुष्य है, जिसकी अपनी इच्छाएँ, आकांक्षाएँ और भावनाएँ हैं।

'कच्चे धागे' इसीलिए एक अमर कहानी है, क्योंकि यह नारी जीवन के उन सूक्ष्म पहलुओं को उजागर करती है, जिन्हें अक्सर समाज नजरअंदाज कर देता है। कुन्तल जैसे पात्र हमारे समाज की असलियत को उजागर करते हैं – और यह पूछते हैं, क्या कोई स्त्री केवल इसीलिए अस्वीकार्य हो सकती है क्योंकि वह सुंदर नहीं है? क्या उसका समर्पण, उसका त्याग, उसका प्रेम – कुछ भी मायने नहीं रखता? यह कहानी हर पाठक को आत्ममंथन के लिए मजबूर करती है – कि हम किस समाज का निर्माण कर रहे हैं, जहाँ स्त्री की पहचान केवल उसकी त्वचा के रंग और चेहरे की बनावट से तय होती है? और क्या हम कभी उस समाज की कल्पना कर पाएँगे जहाँ कुन्तल जैसे पात्र केवल सेवा न करें, बल्कि स्नेह और सम्मान भी प्राप्त करें?

4.2 पूस की एक और रात - लक्ष्मी शर्मा (कहानी)

लक्ष्मी शर्मा का जन्म 25 जून, 1964, इन्दौर (मध्य प्रदेश) में हुआ था। आपकी शिक्षा एम.ए. (हिन्दी) देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर, एम.फिल., पी-एच.डी. (राजस्थान विश्वविद्यालय) जयपुर से हुई।

प्रमुख रचनाएँ– 'एक हँसी की उम्र' (कथा-संग्रह), 'मोहन राकेश के साहित्य में पात्र संरचनात्मक अध्ययन' (शोध-ग्रन्थ), 'आधुनिक हिन्दी कविता' (सम्पादन), 'स्त्री होकर सवाल करती है' (फेसबुक पर स्त्री सरोकारों की कविता, संकलन एवं सम्पादन)। विभिन्न जर्नल्स और पत्र-पत्रिकाओं में कहानी, एकांकी, बाल-कथा, आलोचना, पुस्तक-समीक्षा, शोध आलेख आदि प्रकाशित।

शीघ्र प्रकाश्य : 'स्वर्ग का अन्तिम उतार' (उपन्यास)।

साहित्यिक पत्रिका 'समय माजरा' एवं 'अकसर' के सम्पादन मंडल से सम्बद्ध।

सम्प्रति : सेवानिवृत्त सहआचार्य।

मूल संवेदना

लक्ष्मी शर्मा की कहानी 'पूस की एक और रात' प्रेमचन्द की कहानी 'पूस की रात' से प्रभावित है जिसमें लेखिका ने एक पन्द्रह वर्षीय बाबू जो दिखने में हृष्ट-पुष्ट बीस वर्षीय युवक नज़र आता है। जो अपने से दस वर्ष बड़े भाई कानजी जिसे वह (भैया) कहता है उसके पास पौष के महीने में अपने गाँव से शहर आता है। उस रात जाड़े के थपेड़ों से परेशान उससे बचने के लिए दर -दर भटकते हैं। अपनी दरिद्रता की अत्यन्त दयनीय अवस्था में ठंडी से बचने और पुलिस से बचते-बचाते आधी रात तक भागते हैं। जब ठंडी सही नहीं जाती तो आपस में बाते करते हैं। श्मशान में जगह तलाशते हैं। वहाँ सुरक्षाकर्मी के डर से निकल जाते हैं और भटकते हुए आखिरकार वे एक छोटी-सी जगह का सहारा लेकर दिन निकलने का इन्तजार करते हैं। जाड़ा बड़ी जोरों का होने पर बड़ा भाई अपने छोटे भाई को माँ की तरह उसे सिने से चिपकाकर ठंड से बचाने की कोशिश करता है। और स्वयम् जागे रहने की कोशिश करता है कि सुबह की ट्रेन के मुसाफिरों के लिए रिक्शा चलाकर अधिक से अधिक मेहनत कर अपने

Edit with WPS Office

छोटे भाई के लिए रजाई खरीदेगा। बाबू अपने भाई को बताता है कि मैंने ऐसे ही हिन्दी की एक कहानी पढ़ी थी, जिसमे एक किसान और उसका कुत्ता ठंडी से बचने के लिए आपस में लिपटकर सोते हैं। बाबू अपनी माँ को याद कर बड़बड़ाता हुआ सो जाता है। दिन निकल आता है सुबह की ट्रेन भी आकर चली जाती है। पर दोनों उठते नहीं। तीसरे दिन अखबार की सुर्खियों में लिखा होता है पिछले सत्रह वर्ष में सर्वाधिक ठंडी रही। और उसके नीचे अन्य ख़बर थी आदर्श नगर फ्लाईओवर के खाली पड़े एक कियोस्क में एक समलैंगिक जोड़ा मृत अवस्था में पाया गया दोनों लड़के आवारा और असामाजिक गतिविधियों में लिप्त थे। इस तरह यह कहानी प्रेमचन्द की कहानी की तरह ही दोनों भाइयों की दरिद्रता की त्रासदी को दर्शाती है। जिसे समाज और प्रेस की घटिया मनोवृत्ति और सोच को भी उजागर करती है। यह कहानी बाबू और उसके दादा जैसे अनेक गरीब और दरिद्र लोगों के जीवन और मजबूरी से भरी वास्तविकता को दर्शाती है।

1. शीर्षक की सार्थकता एवं अंतर्संबंध:

शीर्षक 'पूस की एक और रात' सीधे तौर पर मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'पूस की रात' का स्मरण कराता है।

प्रेमचंद की कहानी में हल्कू और जबरा कुत्ता ठंड से बचने के लिए एक-दूसरे से चिपक कर सोते हैं; इस कहानी में बाबू और कानजी उसी तरह देह की गर्माहट से बर्फीली ठंड से जूझते हैं। अंतर केवल इतना है कि यहाँ दोनों भाइयों का यह संघर्ष उनके जीवन का अंतिम संघर्ष बन जाता है।

2. मुख्य पात्र:

कानजी (बड़ा भाई): शहर में साइकिल रिक्शा चलाकर पेट पालने वाला एक संघर्षशील युवक, जो 7 वर्ष पूर्व पिता की मृत्यु के बाद शहर आया था। वह अपने 10 वर्ष छोटे भाई बाबू को भाई से बढ़कर बेटे की तरह मानता है और उसके सुनहरे भविष्य के सपने देखता है।

बाबू (छोटा भाई): लगभग 15 वर्ष का भोला-भाला किशोर। कद-काठी से बीस वर्ष का दिखने वाला बाबू पढ़ाई में होशियार है और अपने भाई की मेहनत का सम्मान करते हुए पढ़-लिखकर रेलवे अफसर बनने की चाह रखता है।

3. कथावस्तु एवं प्रमुख घटनाक्रम:

शरण की खोज और पुलिस/व्यवस्था का भय: पौष माह की जानलेवा ठंड में रात 1 बजे दोनों भाई आश्रय ढूँढने के लिए दौड़ते -भागते हैं। संतरी, पुलिस और चौकीदार का आतंक ऐसा है कि वे कहीं भी खुले में या शेल्टर में चैन से नहीं रुक पाते।

श्मशान (मसान) का प्रसंग: जीवितों के शहर में जगह न मिलने पर वे मसान की गर्म दीवारों के पास शरण ढूँढते हैं, लेकिन चौकीदार के भय से वहाँ से भी भागना पड़ता है।

आदर्श नगर फ्लाईओवर के कियोस्क में शरण: भटकते-भटकते वे आदर्श नगर फ्लाईओवर के नीचे खाली पड़े एक सरकारी कियोस्क (गुमटी) के अंदर छिप जाते हैं।

वात्सल्य और ममतामयी सुरक्षा: शून्य की ओर गिरते पारे में जब बाबू ठंड से काँपने लगता है, तो कानजी अपनी माँ की तरह बाबू को अपनी छाती से चिपका लेता है। वह योजना बनाता है कि सुबह राजधानी एक्सप्रेस के यात्रियों को ढोकर पैसे कमाएगा और बाबू के लिए रजाई खरीदेगा।

दर्दनाक अंत: ठंड की भीषणता दोनों भाइयों की जान ले लेती है। सुबह वे कभी नहीं जाग पाते।

4. कहानी में उभरे प्रमुख सरोकार व समस्याएँ:

महानगरीय क्रूरता व संवेदनहीनता: चमक-दमक भरे शहर (संजय मार्केट, आलीशान बहुमंजिला इमारतें) की व्यवस्था में निर्धन और बेसहारा तबके के लिए सिर छुपाने की दो गज ज़मीन भी मयस्सर नहीं है।

Edit with WPS Office

व्यवस्था और पुलिसिया उत्पीड़न: गरीब को बिना किसी अपराध के केवल उसकी दरिद्रता के आधार पर चोर, उचक्का या आवारा समझकर प्रताड़ित किया जाता है।

मीडिया व समाज का घिनौना दृष्टिकोण: कहानी के अंत में अखबार दोनों सगे भाइयों के पवित्र, वात्सल्यपूर्ण और विवशता भरे अंतिम आलिंगन को सनसनीखेज बनाकर "समलैंगिक जोड़ा" और "असामाजिक/आवारा गतिविधि" करार देता है। यह पत्रकारिता के गिरते स्तर और समाज की विकृत दृष्टि पर तीखा व्यंग्य है।

भाग 1 के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न :

1.1 'भारत का मुकुट' — नरेंद्र कोहली (व्यंग्य निबंध)

टिप्पणीपरक प्रश्न (लघु उत्तरीय):

'भारत का मुकुट' निबंध में चित्रित 'रामलुभाया' की नागरिक मानसिकता पर टिप्पणी लिखिए।

"सेना नहीं घुस सकती, क्योंकि वह भारतीय है; आतंकी घुस सकते हैं, क्योंकि वे पाकिस्तानी हैं।" — इस कथन के निहितार्थ पर संक्षेप में विचार व्यक्त कीजिए।

दीर्घोत्तरीय प्रश्न:

'भारत का मुकुट' निबंध के आधार पर स्पष्ट कीजिए कि किस प्रकार वोट बैंक की राजनीति राष्ट्रीय सुरक्षा, आंतरिक एकता और संवैधानिक मूल्यों को आहत कर रही है।

नरेंद्र कोहली के व्यंग्य 'भारत का मुकुट' की मूल संवेदना का विश्लेषण करते हुए बताइए कि लेखक ने कश्मीर समस्या के समाधान हेतु नागरिक चेतना और प्रशासनिक इच्छाशक्ति पर क्यों बल दिया है?

1.2 'सोशल मीडिया और क्रांति' — सम्पत सरल (लघु निबंध)

टिप्पणीपरक प्रश्न (लघु उत्तरीय):

सम्पत सरल द्वारा विवेचित 'डिजिटल भक्ति' और पुराने समय की पोस्टकार्ड-श्रद्धा के अंतर पर टिप्पणी लिखिए।

सोशल मीडिया पर 'संवेदना की मार्केटिंग' (गरीबी और लाचारी का प्रदर्शन) पर लेखक के कटाक्ष को संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।

दीर्घोत्तरीय प्रश्न:

‘सोशल मीडिया और क्रांति’ निबंध में सम्पत सरल ने आभासी दुनिया (वर्चुअल वर्ल्ड) और मानवीय व्यवहार की किन विसंगतियों को रेखांकित किया है? सविस्तार विवेचना कीजिए।

"सोशल मीडिया ने मूक को वाणी और पंगु को गिरि लाँघने का सामर्थ्य तो दिया, पर वास्तविक संवेदनाओं को कुंद कर दिया।" — निबंध के आलोक में इस कथन की समीक्षा कीजिए।

भाग 2

2.1 'और ओ सुघरका...' — सत्यदेव त्रिपाठी (संस्मरण)

टिप्पणीपरक प्रश्न (लघु उत्तरीय):

'करियवा और उजरका' के स्वभावगत अंतर और लेखक के साथ उनके भावनात्मक लगाव पर टिप्पणी लिखिए।


Edit with WPS Office

सुघरका के रूप-सौंदर्य, आहार-शैली और उसकी 'मीठी चाल' की विशेषताओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

दीर्घोत्तरीय प्रश्न:

संस्मरण 'और ओ सुघरका...' के आधार पर लुप्त होती ग्रामीण कृषि संस्कृति तथा मनुष्य एवं पशु के बीच के मर्मस्पर्शी संबंधों का विस्तृत मूल्यांकन कीजिए।

संस्मरण विधा के तत्वों की कसौटी पर कसते हुए 'और ओ सुघरका...' की भाषा-शैली, आंचलिक शब्दावली और संवेदनात्मक धरातल का सोदाहरण विवेचन कीजिए।

2.2 'नई बिरादरी' — स्वयं प्रकाश (नुक्कड़ नाटक)

टिप्पणीपरक प्रश्न (लघु उत्तरीय):

'नई बिरादरी' नाटक में 'रमिया' के चरित्र में विकसित होती विद्रोही चेतना पर टिप्पणी लिखिए।

एक सामाजिक विधा के रूप में 'नुक्कड़ नाटक' के स्वरूप और 'नई बिरादरी' में सूत्रधार की भूमिका पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए।

दीर्घोत्तरीय प्रश्न:

'नई बिरादरी' नुक्कड़ नाटक के माध्यम से स्वयं प्रकाश ने समाज के किन चार शोषक स्तंभों (ठाकुर, ब्राह्मण, बनिया और अफसर) के गठजोड़ को बेनकाब किया है? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

"नई बिरादरी केवल एक दलित परिवार की कथा नहीं, बल्कि शोषण-मुक्त समतामूलक समाज के निर्माण का आह्वान है।" — इस कथन के संदर्भ में नाटक के वैचारिक संदेश की समीक्षा कीजिए।

भाग 3

3.1 'प्रसाद के नाम पत्र' — प्रेमचंद (पत्र साहित्य)

टिप्पणीपरक प्रश्न (लघु उत्तरीय):

'कंकाल' उपन्यास को लेकर प्रेमचंद द्वारा अपने साहित्यिक पूर्वाग्रह को त्यागने और क्षमा माँगने के प्रसंग पर टिप्पणी लिखिए।

काशी नगरी के साहित्यिक परिवेश और 'हंस' पत्रिका के प्रकाशन के संबंध में प्रेमचंद की चिंताओं को संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।

दीर्घोत्तरीय प्रश्न:

'प्रसाद के नाम पत्र' के आधार पर प्रेमचंद के प्रगतिशील वैचारिक दृष्टिकोण, अतीत-मोह के खंडन तथा सामाजिक रूढ़ियों पर उनके प्रहार का सविस्तार वर्णन कीजिए।

पत्र विधा के ऐतिहासिक और साहित्यिक महत्त्व को रेखांकित करते हुए स्पष्ट कीजिए कि प्रेमचंद का यह पत्र जयशंकर प्रसाद के साथ उनके संबंधों और तत्कालीन हिंदी साहित्य के विमर्श को किस प्रकार उद्घाटित करता है?

3.2 'लघु भारत मॉरीशस का संस्कृति-प्रेम' — डॉ. शकुन्तला कालरा (यात्रा-वृत्तांत)

टिप्पणीपरक प्रश्न (लघु उत्तरीय):


Edit with WPS Office

मॉरीशस स्थित 'गंगा-तालाब' (ग्रांड बाँसा) और मारीशेखर महादेव के धार्मिक महत्त्व पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

मॉरीशस में भोजपुरी लोक-बोली, भाषा-संरक्षण और मुहर्रम जैसे अवसरों पर दिखने वाले सांस्कृतिक समन्वय पर प्रकाश डालिए।

दीर्घोत्तरीय प्रश्न:

'लघु भारत मॉरीशस का संस्कृति-प्रेम' पाठ के आधार पर 19वीं सदी के गिरमिटिया मजदूरों के दारुण संघर्ष और उनके अदम्य सांस्कृतिक संकल्प का सोदाहरण विवेचन कीजिए।

"मॉरीशस को लघु भारत कहना पूर्णतः तर्कसंगत है।" — यात्रा-वृत्तांत के आधार पर वहाँ के पर्व-त्योहारों, 'रामचरितमानस' की व्याप्ति और भारतीय अस्मिता के संरक्षण के परिप्रेक्ष्य में सिद्ध कीजिए।

भाग 4

4.1 'कच्चे धागे' — उषा प्रियंवदा (कहानी)

टिप्पणीपरक प्रश्न (लघु उत्तरीय):

कहानी में टूटी हुई सतरंगी चूड़ियों के प्रतीकात्मक अर्थ और कुन्तल की आंतरिक वेदना पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

कुन्तल के जर्जर घर का परिवेश (टपकता नल, सीलन भरी दीवारें) उसके जीवन के यथार्थ को कैसे व्यक्त करता है? संक्षेप में लिखिए।

दीर्घोत्तरीय प्रश्न:

'कच्चे धागे' कहानी के आधार पर मध्यवर्गीय परिवार में रूप-रंग के संकीर्ण मापदंडों की बलि चढ़ी नारी (कुन्तल) के मौन संत्रास और उपेक्षित अस्तित्व की विस्तृत समीक्षा कीजिए।

"उषा प्रियंवदा की पात्र-सृष्टि में उग्र विद्रोह नहीं, मौन आक्रोश और मार्मिक चुप्पी अधिक मुखर होती है।" — 'कच्चे धागे' कहानी के संदर्भ में इस कथन की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।

4.2 'पूस की एक और रात' — लक्ष्मी शर्मा (कहानी)

टिप्पणीपरक प्रश्न (लघु उत्तरीय):

प्रेमचंद की 'पूस की रात' और लक्ष्मी शर्मा की 'पूस की एक और रात' के अंतर्संबंध एवं भिन्नता पर टिप्पणी लिखिए।

कहानी के अंत में अखबार द्वारा दोनों भाइयों के शवों को 'समलैंगिक जोड़ा' और 'आवारा' घोषित किए जाने पर निहित व्यंग्य को स्पष्ट कीजिए।

दीर्घोत्तरीय प्रश्न:

'पूस की एक और रात' कहानी के माध्यम से लेखिका ने आधुनिक महानगरीय संवेदनहीनता, व्यवस्था के अत्याचार और निर्धन वर्ग की लाचारी को किस प्रकार चित्रित किया है? विस्तार से लिखिए।

कानजी और बाबू के भ्रातृ-प्रेम, उनके भावी सपनों और बर्फीली रात में जीवन रक्षा के कारुणिक संघर्ष का चरित्रांकन कीजिए।


Edit with WPS Office